International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वेदान्त दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त

शोधार्थी
रोहित कुमार मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र, कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर
शोध निर्देशक
डॉ. वाहिद नसरू एसोसिएट प्रोफेसर, मध्य एशियाई अध्ययन केन्द्र,कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर

वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन ही नहीं विश्व की दर्शन पद्धतियों में शिरोमणि है। वेदान्त शब्द का अर्थ है 'वेद का अन्त' अथवा वैदिक विचारधारा की पराकाष्टा। वैदिक साहित्य के विकास को चार श्रेणियों– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् में विभाजित किया जाता है। इनमें उपनिषद्ों का विकास सबसे बाद में है। अतः इन्हें वेदान्त कहा जाता है। यहाँ वेदान्त शब्द उक्त विचारधाराओं के अर्थ में आया है, जिनका विकास उपनिषदों के आधार पर हुआ है। इसलिए वेदान्त का अर्थ है– 'वह शास्त्र जिसके लिए उपनिषद् ही प्रमाण है।'[1]

वेदान्त दर्शन का एक अन्य आधार भगवद्गीता है। गीता और उपनिषद् का भाव प्राय : समान हैं। अन्तर केवल इतना है कि गीता में धार्मिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया है, जबकि उपनिषद् में अमूर्तभाव पर। उपनिषदों में समस्त ज्ञान का अधिष्ठान ब्रह्म विद्या को बताकर उसकी प्रशंसा की गयी है। जैसा कि सुरेश्वाचार्य ने कहा है– **'आत्मज्ञानावतारार्थः सर्वशास्त्रसमुधमः'**[2] सभी शास्त्रों की प्रवृत्ति आत्मज्ञान को प्रकट करने के लिए है। अतः आत्म विद्या या वेदान्त ही सभी शास्त्र प्रयोजन है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार अध्यास

अध्यास सिद्धान्त वेदान्त की तार्किक कुजीं है। अध्यास शब्द अधि= पर और आस= फेंकना, शब्दों से बना है। अर्थात् किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु पर स्थापित करना अध्यास है। न्याय–वैशेषिक दर्शन म अध्यास की परिभाषा है– किसी वस्तु के गुणों को किसी अन्य

[1] बृहद्रारण्यक उपनिषद्, 2/5/19
[2] बृहद्रारण्यक उपनिषद् भाष्य वार्तिक, 1/4/405

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वस्तु पर आरोपित करना अध्यास है।[3] मीमांसकों के अनुसार एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप पहचान में ना आए वह अध्यास है।[4] माध्यमिक बौद्धो के अनुसार अध्यास किसी वस्तु में उसके गुणों के विपरित गुण दिखाई देना है। सभी परिभाषाओं के अनुसार किसी एक वस्तु पर किसी अन्य वस्तु के गुणों को देखना अध्यास कहलाता है। शंकराचार्य के शब्दों में स्मृति रूप पूर्व दृष्ट वस्तु की अन्य वस्तु में प्रतीति या अवभास या विश्वास ही अध्यास है।[5] दूसरे शब्दों में ऐसी वस्तु का वहाँ, भास होना जहाँ वह न हो अध्यास है। उदाहरण – रज्जुसर्प।

एक अन्य परिभाषा के अनुसार अन्य धर्म की प्रतीति अध्यास है– **'अनस्य अन्य धर्मावभासत्ता'**[6] अर्थात किसी एक वस्तु पर किसी अन्य वस्तु के धर्म को आरोपित करना अध्यास है। उदाहरण रज्जु या शुक्ति पर सर्पत्व या रजत्व धर्म का आरोप।

अध्यास के घटक

अध्यास तीन घटकों का संगम हैं– 1. अधिष्ठान, 2. अध्यस्त वस्तु, 3. आरोप या तादात्म्य की क्रिया। अध्यास का अधिष्ठान वह वस्तु है जिस पर किसी वस्तु का आरोप किया जाता है। जैसे शुक्तिरजत ज्ञान में शुक्ति अधिष्टान हैं। अध्यस्थ वह वस्तु है, जिसका अधिष्ठान पर आरोप किया जाता है। यह अतीत अनुभव में सत् होते हुए भी अध्यास काल में अनुपस्थित होने के कारण असत् होती है। तीसरा घटक आरोप है जिसके अभाव में केवल अधिष्ठान और अध्यस्थ वस्तु अध्यास नहीं है। यह अध्यास तब कहा जायेगा जब अधिष्ठान में अध्यस्थ का आरोप होगा या इन दोनों में तादात्म्य होगा। यह आरोप अविद्या के कारण होता है। अविधाजन्य होन के कारण अध्यस्थ के गुण–दोष का प्रभाव अधिष्ठान पर नहीं पड़ता, क्योंकि अध्यस्थ वस्तु मिथ्या है। इस अविद्या के कारण ही जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर स्वयं को कर्ता, भोक्ता समझता है। इस अविद्या के कारण ही जीव

[3] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य उपोद्धात्
[4] ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य उपोद्धात्
[5] अध्यासोनाम स्मृतिरूपः परत्रपूर्व दृष्टावभावः। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य उपोद्धात्
[6] ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य – उपोद्धात

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

अपने ऊपर अनात्म पदार्थों और उसके धर्मो का आरापण कर अनेक दुःखों का भोग करता है। यह मिथ्या ज्ञान रूप अध्यास सभी अनर्थों की जड़ है।

इस प्रकार अध्यास मिथ्या ज्ञान या अन्यथा ज्ञान है। यह विषय और विषयी का एक–दूसरे पर अध्यारोप है। शांकर वेदान्त कहता है, कि इनमें से विषय और विषयी दोनों को सत् नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका सम्बन्ध मिथ्या है और दो सत् वस्तुओं का सम्बन्ध मिथ्या नहीं हो सकता। दोनों को असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन दोनों में जो विषयी हैं उसका निराकरण कभी नहीं किया जा सकता। विषय, विषयी और उसका अध्यारोप इन तीनों को मिथ्या कहना भी असंगत है। अतः विषय और उसके अध्यारोप को ही मिथ्या कहा जा सकता है, क्योंकि रज्जुसर्प के दृष्टान्त से स्पष्ट है कि जो आरोपित हैं उसका बाध होता है। अतः बाध ही मिथ्यातत्त्व है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार माया या अविद्या

'माया' शब्द उतना ही प्राचीन है, जितना संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है।[7] ऋग्वेद में इस शब्द उल्लेख अनेक बार किया गया है। उक्त उल्लेखों का सार है कि इस शब्द का प्रयोग चाहे देवताओं के प्रसंग में हो या दैत्यों के लेकिन यह मूलतः अतिप्राकृतिक शक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी अर्थ में अथर्व वेद में भी इस शब्द का उल्लेख हुआ है।[8] उपनिषदों में भी माया शब्द का उल्लेख मिलता है। बृहद्‌ारण्यक उपनिषद् में ऋग्वेद का मन्त्र **'इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते'** शब्द का उल्लेख है।[9] श्वेताश्वर उपनिषद में यह शब्द लगातार दो श्लोकों में आया है।[10] वेदों की तरह यहाँ भी सर्वप्रथम इसको उस शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। जिसका आधार ईश्वर है, और जिसके द्वारा समस्त संसार की उत्पत्ति सम्भव है। किन्तु इसको माया की उत्पत्ति के अर्थ में लिया गया है, क्योंकि यह कहा गया है कि इस माया के अवयवों द्वारा ही यह समस्त विश्व में व्याप्त है।

[7] ऋग्वेद, 6/47/18
[8] अथर्ववेद, 4/37/3
[9] बृहदारण्यक उपनिषद्– 2/5/19
[10] श्वेताश्वर उपनिषद्– 4/94/10

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

भगवद्गीता में भी माया शब्द का वर्णन किया गया है।[11] जिसका भाव वेदों में वर्णित अर्थों पर ही आधारित है। योग वशिष्ठ के लेखक द्वारा भी माया शब्द का प्रयोग किया गया है। एक स्थान पर वह माया को **'प्रकृति'** भी कहते हैं।[12] इन्हीं अर्थों को आधार मानकर ही अनेक पुराणों में भी माया शब्द का उल्लेख किया गया है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव

आचार्य शंकर के अनुसार शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्मफल का भोग करने वाले तथा उपाधियों से आवृत आत्म चैतन्य को जीव कहते हैं।[13] अविद्या के कारण स्वरूप स्थूल और सूक्ष्म शरीर आत्मा ही जीव कहलता है। संसारो वेश में जीव परमतत्त्व ही है। आचार्य **'शारीरिक भाष्य'** में कहते हैं कि इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार और शरीर की उपाधियों से घिरा हुआ और पृथक् किया गया आत्मा ही जीव है। आत्मा पारिमार्थिक सत् है, जीव व्यवहारिक सत् है।

आत्मा निरूपाधिक है, जीव सोपाधिक है, आत्मा निरवयव, विभु, अवयव है, जबकि जीव सावयव, सीमित, अनेक तथा मानस, बुद्धि, अंहकार और चित्ता के कारण वयक्तिक है। जीव मनोवैज्ञानिक तत्त्व है, परन्तु जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यह आत्मा का विवर्त है। जैसे निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों एक ही हैं। उसी प्रकार आत्मा और जीव में कोई अन्तर नहीं है। जीव अविद्या के कारण है। अविद्या के नाश होने पर जीव परमात्म स्वरूप हो जाता है।

प्रतिबिम्बवाद का सिद्धान्त

ब्रह्म और जीव में बिम्ब–प्रतिबिम्ब का सम्बन्ध है। उपरोक्त यह विवरण प्रस्थान के अनुयायीयों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्रकृतार्थ विवरण में ईश्वर को माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र माना गया है और जीवों को आवरण विक्षेप वाले उन असंख्य अंशों में उसी चेतना का प्रतिबिम्ब माना गया है जिन्हें अविद्या कहते हैं।[14] संक्षेप– शारीरिक भाष्य के

[11] भगवत्गीता – 4/6,7/14,7/15,5/13
[12] योग वशिष्ठ – 6/2.84.6
[13] अस्ति आत्मा जीवास्य शरीरेन्द्रियं जराध्यक्ष कर्मफल सम्बन्धी, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 1/3/19
[14] सिद्धान्तलेश संग्रह, पृ०– 82

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

लेखक के मत के अनुसार ब्रह्म का अविद्या में प्रतिबिम्ब ही ईश्वर है और ब्रह्म का अंतःकरण में प्रतिबिम्ब जीव कहलाता है।[15] विद्यारण्य मत के अनुसार ईश्वर माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है और जीव ब्रह्म में अविद्या का प्रतिबिम्ब है।[16] अविद्या के दूर हो जाने पर प्रतिबिम्ब स्वरूप जीव की सत्ता भी नहीं रहती। केवल एकमात्र ब्रह्म स्वरूप ही बचता है। दूसरे शब्दों में अविधा रूपी दर्पण में ब्रह्म रूपी चन्द्र के प्रतिबिम्ब को ही जीव कहते हैं। अज्ञान के कारण ही जीव स्वतः यथार्थ रूप में मानने लगता है।

अवच्छेदवाद का सिद्धान्त

अवच्छेदवाद का सिद्धान्त भामती प्रस्थान के अनुयायियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उनके अनुसार जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है अपितु ब्रह्म स्वयं अंतःकरण की उपाधियों से सीमित हो जाता है। जिस प्रकार आकाश वस्तुतः सर्वव्यापी और एक होते हुए भी घटाकाश, मढाकाश आदि अनेक रूपों में आभासित होता है। उसी प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापी और एक होते हुए अविद्या के कारण अनेक प्रकार जीव और विषयों के रूप में प्रतीत होता है।

उपाधियों का यह सम्पर्क उस स्फटिक के समान है, जो लाल रंग के साहचर्य से लाल रंग का प्रतीत होता है।[17] जिस घट, मठ आदि द्वारा निर्मित परिधियों के हट जाने पर आकाश के भाग सर्वव्यापी आकाश में समा जाते हैं। उसी प्रकार अविद्या के दूर हो जाने पर इनसे सीमित चैतन्य रूप जीव ब्रह्म चैतन्य से अभिन्न हो जाता है।

आभासवाद का सिद्धान्त

आभासवाद के सिद्धान्त को सुरेश्वरार्च द्वारा वर्णित किया गया है। जिनके अनुसार प्रतिबिम्ब एवं अवच्छेदवाद सम्बन्धी विचार कोई तात्विक सिद्धान्त नहीं है। आचार्य सुरेश्वर इन सिद्धान्तों को केवल उपमा मात्र स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनका मत है कि, ये केवल जीव को ब्रह्म का आभास मात्र सिद्ध करते हैं। अविद्या ब्रह्म को प्रतिबिम्बित और सीमित नहीं कर सकती है। अविद्या केवल भ्रान्ति है। अतः उसका आभास भी मिथ्या है।

[15] सिद्धान्तलेश संग्रह, पृ० 85
[16] पंचदशी– 1/16–17
[17] ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 3/2/15

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वास्तव में यह सभी सिद्धान्त शांकर वेदान्त से ही प्रतिपादित हैं। जो ब्रह्म और जीव के अभेद को बताते हैं। जीव अपने तात्विक रूप में एक ही शुद्ध चेतन तत्त्व है, सभी सिद्धान्त पृथक–पृथक ढंग से इसी मत की पुष्टि करते हैं। फिर भी अपनी उपाधियों के द्वारा सीमित होने के कारण भिन्न–भिन्न प्रतीत होते हैं। दूसरे शब्दों में जीव सीमित शान्त रूप से दष्टिगोचर होते हुए भी वस्तुतः ब्रह्म से अभिन्न हैं।

विवर्त्तवाद का सिद्धान्त

वेदान्त के अनुसार जगत सर्वथा मिथ्या है। परन्तु स्वयं मिथ्या होती हुई अनादि और अनिर्वचनीय अविद्या के प्रभाव से इसका आभास मात्र ही होता रहता है। वस्तुतः परब्रह्म ही एकमात्र सत्य वस्तु है। अविद्या के कारण ही ब्रह्म एक और से जीव के रूप में, दूसरी और से जगत् के रूप में और तीसरी और से इन दोनों को नियम में रखते हुए चलाने वाले ईश्वर के रूप में भ्रम के कारण भासत्ता रहता है।[18] उस अविद्या को अनादि माना गया है, क्योंकि उसके आरम्भ का पता लग ही नहीं सकता।

अविद्या स्वयं अवस्तुभूत, निःसार अविद्या वस्तुभूत और सारभूत परब्रह्म को किस तरह उपरोक्त तीनों रूपों में अवभासित कर सकता है, वह क्या है और स्वयं किस पर आश्रित हैं, इस प्रकार की अविद्या के स्वरूप, स्वभाव आदि की व्याख्या की ही नहीं जा सकती। अतः उसे अनिर्वचनीय ठहराया गया है। इन जीव, जगत् और ईश्वर के रूप तीन वस्तुआ के झूठे आभास को विर्वत कहते हैं।[19] इसलिए वेदान्त को **'विवर्तवाद'** कहा जाता है। इस अविद्या से मुक्ति पाने के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही एक मात्र उपाय हैं। यदि कोई जीव श्रद्धापूरक गुरू के मुख से उपनिषद्–वाक्यों को सुने, तत्पश्चात् उन पर क्रम से मनन अर्थात् सोच–विचार करें फिर उनके अर्थ को सत्य सिद्धान्तों के ज्ञान के दृढ़ अभ्यास के द्वारा अपने मस्तिष्क व बुद्धि पर गहरा अङ्कित करें ताकि पुनः इस सच्चाई के विषय में उसे कोई संशय न रहे, तो ऐसा हो जाने के अनन्तर शरीर छूट जाने पर उसका अपने प्रति जीव–भाव, प्रमेय, जगद्भाव तथा ब्रह्म के प्रति झूठा ईश्वभाव तीनों एकमात्र शुद्ध और

[18] चिच्छायावेशतः शक्तिश्चेतनेव विभाति सा। तच्छक्त्युपाधिसंयोगाद् ब्रह्ममैवेश्वरता व्रजेत्।। पंचदशी, 3–40
[19] विवर्तते– तदसत्यरूपमात्मन्युपगच्छति, असत्यविभक्तान्यरूपोपग्राहिता विवर्तस्तस्यास्तद्विवर्तते। शिवदृष्टि, पृ० 1–9

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 01, Jan- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

केवल ब्रह्मभाव में ही परिसम्पात हो जाते है। इस अवस्था को ब्रह्मनिर्वाण कहा जाता है। वेदान्त की दृष्टि में जीवन का चरम लक्ष्य यही अवस्था है जिसको **'मुक्ति'** कहा जाता है। ब्रह्म का कभी अभाव नहीं होता, अतः उसे सत् कहते हैं।

ब्रह्म जड़ नहीं है, अतः ब्रह्म को चित् कहते हैं। ब्रह्म आनन्द स्वरूप है, क्योंकि उसमें किसी प्रकार का सुख–दुख नहीं होता। वस्तुतः ब्रह्म के आनन्द स्वरूप में सुख–दुख, क्लेश, कर्म, विपाक आदि अवांछनीय भावों का अभाव होता है। परब्रह्म का एक शून्यकार सतत् शान्ति रूप होता है। जीव की काल्पनिक जीवता नष्ट होकर उसकी वास्तविक सच्चिदानन्दता की परम शान्ति पुनः प्रकाशमान होने लगना **'ब्रह्मनिर्वाण'** की अवस्था है। यही वेदान्त के **'विवर्त्तवाद'** का सार है।